प्रेमचंद की हिन्दी-उर्दू कहानियाँ

संकलन् व सम्पादन
डा. कमल किशोर गोयनका

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
1990

कफ़न

झोंपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए हैं और अन्दर बेटे की जवान बीवी बुधिया प्रसव-वेदना से पछाड़े खा रही थी। रह-रह कर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज़ निकलती थी, कि दोनों कलेजा थाम लेते थे। जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई, सारा गाँव अन्धकार में लय हो गया था।

घीसू ने कहा—मालूम होता है बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते हो गया, जा देख तो आ।

माधो चिढ़कर बोला—मरना ही है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती। देख कर क्या करूँ।

—तू बड़ा बेदर्द है बे ! साल-भर जिसके साथ सुख-चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफ़ाई।

—तो मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ-पाँव पटकना नहीं देखा जाता।

चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम। घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम करता। माधव इतना काम-चोर था कि आध घण्टे काम करता तो घण्टे-भर चिलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मज़दूरी नहीं मिलती थी। था। घर में मुट्ठी-भर भी अनाज मौजूद हो, तो उनके लिए काम करने की क़सम थी। जब दो-एक फ़ाक़े हो जाते तो घीसू पेड़ पर चढ़कर लड़कियाँ तोड़ लाता और माधो बाज़ार से बेच लाता। और जब तक वह पैसे रहते, दोनों इधर-उधर मारे-मारे बफरते। गाँव में काम की कमी न थी। किसानों का गाँव था, मेहनती आदमी के लिए पचास काम थे। मगर इन दोनों को लोग उसी वक़्त बुलाते थे, जब दो आदमियों से एक का काम पाकर भी सन्तोष कर लेने के सिवा और कोई चारा न होता। अगर दोनों साधु होते तो उन्हें सन्तोष और धैर्य के लिये, संयम और की नियम की बिलकुल ज़रूरत न होती। यह तो इनकी प्रकृति थी। विचित्र जीवन था इनका ! घर में मिट्टी के दो-चार बर्तनों के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढाँके हुए जिये जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त, कर्ज़ से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मार भी खाते, मगर कोई भी गम नहीं। दीन इतने कि वसूली की बिलकुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ-न-कुछ कर्ज़ दे देते थे।

मटर, आलू की फसल में दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और भून-भानकर खा लेते या दस-पाँच ऊख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाश-वृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के पद-चिह्नों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और भी उजागर कर रहा था। इस वक़्त भी दोनों अलाव के सामने बैठकर आलू भून रहे थे, जो कि किसी के खेत से खोद लाये थे। घीसू की स्त्री का तो बहुत दिन हुए, देहान्त हो गया था। माधव का ब्याह पिछले साल हुआ था। जबसे यह औरत आई थी, उसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी और इन दोनों बे-ग़ैरतों का दोज़ख़ भरती रहती थी। जब से वह आई, यह दोनों और भी आरामतलब हो गये थे। बल्कि कुछ अकड़ने भी लगे थे। कोई कार्य करने को बुलाता, तो निर्ब्याज भाव से दुगनी मज़दूरी माँगते। वही औरत आज प्रसव-वेदना से मर रही थी और ये दोनों शायद इसी इन्तज़ार में थे कि वह मर जाय तो आराम से सोयें।

घीसू ने आलू निकाल कर छीलते हुए कहा—जाकर देख तो, क्या दशा है उसकी? चुड़ैल का फिसाद होगा, और क्या? यहाँ तो ओझा भी एक रुपया माँगता है।

माधव को भय था, कि वह कोठरी में गया, तो घीसू आलूओं का बड़ा भाग साफ़ कर देगा। बोला—मुझे वहाँ जाते डर लगता है।

—डर किस बात का है, मैं तो यहाँ हूँ ही।

—तो तुम्हीं जाकर देखो न?

—मेरी औरत जब मरी थी, तो मैं तीन दिन तक उसके पास से हिला तक नहीं ; और फिर मुझसे लजायेगी कि नहीं? जिसका कभी मुँह नहीं देखा, आज उसका उघड़ा हुआ बदन देखूँ? उसे तन की सुध भी तो न होगी? मुझे देख लेगी तो खुलकर हाथ-पाँव भी न पटक सकेगी !

—मैं सोचता हूँ, कोई बाल-बच्चा हुआ, तो क्या होगा? सोंठ, गुड़, तेल, कुछ भी तो नहीं है घर में।

—सब कुछ आ जायेगा। भगवान् दें तो ! जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे हैं, वे ही कल बुलाकर रुपये देंगे। मेरे नौ लड़के हुए, घर में कभी कुछ न था ; मगर भगवान् ने किसी-न-किसी तरह बेड़ा पार ही लगाया।

जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ-बहुत अच्छी न थी, और किसानों के मुक़ाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना चाहते थे, कहीं ज़्यादा सम्पन्न थे, जहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू

किसानों से कहीं ज़्यादा विचारवान् था और किसानों के विचार-शून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था। हाँ, उसमें यह शक्ति न थी, कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता। इसलिए जहाँ उसकी मण्डली के और लोग गाँव के सरग़ना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गाँव ऊँगली उठाता था। फिर भी उसे यह तस्क़ीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम-से-कम उसे किसानों की-सी जाँ तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती, और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फ़ायदा तो नहीं उठाते। दोनों आलू निकाल-निकाल कर जलते-जलते ख़ाने लगे। कल से कुछ नहीं खाया था। इतना सब्र न था कि उन्हें ठंडा हो जाने दें। कई बार दोनों की जबानें जल गईं। छिल जाने पर आलू का बाहरी हिस्सा बहुत ज़्यादा गर्म न मालूम होता ; लेकिन दाँतों के तले पड़ते ही अन्दर का हिस्सा ज़बान, हलक़ और तालू को जला देता था और उस अंगारे को मुँह में रखने से ज़्यादा ख़ैरियत इसी में थी कि वह अन्दर पहुँच जाय। वहाँ उसे ठंडा करने के लिए काफ़ी सामान थे। इसलिए दोनों जल्द-जल्द निगल जाते। हालाँकि इस कोशिश में उनकी आँखों से आँसू निकल आते।

घीसू को उस वक़्त ठाकुर की बरात याद आई, जिसमें बीस साल पहले वह गया था। उस दावत में उसे जो तृप्ति मिली थी, वह उसके जीवन में एक याद रखने लायक बात थी, और आज भी उसकी याद ताजी थी। बोला—वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस तरह का खाना और भरपेट नहीं मिला। लड़की वालों ने सबको भरपेट पूड़ियाँ खिलाई थीं, सबको ! छोटे-बड़े सब ने पुड़ियाँ खाईं और असली घी की ! चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई, अब क्या बताऊँ कि उस भोज में क्या स्वाद मिला, कोई रोक-टोक नहीं थी, जो चीज़ चाहो, माँगो, जितना चाहो, खाओ। लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया, कि किसी से पानी न पिया गया। मगर परोसने वाले हैं कि, पत्तल में गर्म-गर्म, गोल-गोल सुवासित कचोड़ियाँ डाल देते हैं। मना करते हैं कि नहीं चाहिये, पत्तल पर हाथ से रोके हुए हैं, मगर वह हैं कि दिये जाते हैं। और जब सबने मुँह धो लिया, तो पानी-इलायची भी मिली। मगर मुझे पान लेने की कहाँ सुध थी? खड़ा हुआ न जाता था। चटपट जाकर अपने कम्बल पर लेट गया। ऐसा दिल-दरियाव था वह ठाकुर !

माधव ने इन पदार्थों का मन-ही-मन मज़ा लेते हुए कहा—अब हमें कोई ऐसा भोज नहीं खिलाता।

– अब कोई क्या खिलायेगा। वो ज़माना दूसरा था। अब तो सब को किफ़ायत

सूझती है। सादी-ब्याह में मत ख़र्च करो। क्रिया-कर्म में मत खर्च करो। पूछो ग़रीबों का माल बटोर-बटोर कर कहाँ रखोगे? बटोरने में तो कमी नहीं है। हाँ, ख़र्च में किफ़ायत सूझती है।

—तुमने एक— बीस पूरियाँ खाई होंगी?

—बीस से ज्यादा खाई थीं !

—मैं पचास खा जाता !

—पचास से कम मैंने भी न खाई होंगी। अच्छा पट्ठा था। तू तो मेरा आधा भी नहीं है।'

आलू खाकर दोनों ने पानी पीया और वहीं अलाव के सामने अपनी धोतियाँ ओढ़ कर पाँव पेट में डाले सो रहे। जैसे दो बड़े-बड़े अजगर गेंडुलियाँ मारे पड़े हों।

और बुधिया अभी तक कराह रही थी।

(2)

सबरे माधव ने कोठरी में जाकर देखा, तो उसकी स्त्री ठंडी हो गई थी। उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। पथराई हुई आँखें ऊपर टँगी हुई थीं। सारी देह धूल से लतपथ हो रही थी। उसके पेट में बच्चा मर गया था।

माधव भागा हुआ घीसू के पास आया। फिर दोनों ज़ोर-ज़ोर से हाय-हाय करने और छाती पीटने लगे। पड़ोस वालों ने यह रोना-धोना सुना, तो दौड़े हुए आये और पुरानी मर्यादा के अनुसार इन अभागों को समझाने लगे।

मगर ज़ियादा रोने-पीटने का अवसर न था। कफ़न की और लकड़ी की फ़िक्र करनी थी। घर में तो पैसा इस तरह ग़ायब था, जैसे चील के घोंसले में माँस।

बाप-बेटे रोते हुए गाँव के ज़मींदार के पास गये। वह इन दोनों की सूरत से नफ़रत करते थे। कई बार इन्हें अपने हाथों पीट चुके थे, चोरी करने के लिए, वादे पर काम पर न आने के लिए। पूछा—क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है? अब तो तू कहीं दिखलाई भी नहीं देता !। मालूम होता है, इस गाँव में रहना नहीं चाहता।

घीसू ने जमीन पर सिर रखकर आँखों में आँसू भरे हुए कहा—सरकार ! बड़ी विपत्ति में हूँ। माधव की घरवाली रात को गुज़र गई। रात-भर तड़पती रही सरकार ! हम दोंनों उसके सिरहाने बैठे रहे। दवा-दारू जो कुछ हो सका, सब कुछ किया, मुदा वह हमें दग़ा दे गई। अब कोई एक रोटी देने वाला भी न रहा मालिक ! तबाह हो गये। घर उजड़ गया। आपका ग़ुलाम हूँ, अब आपके सिवा कौन उसकी मिट्टी पार लगायेगा। हमारे हाथ में तो जो कुछ था, वह सब तो दवा-दारू में उठ गया। सरकार ही की दया होगी तो उसकी मिट्टी उठेगी। आपके सिवा किसके द्वार पर जाऊँ।

ज़मींदार साहब दयालु थे। मगर घीसू पर दया करना काले कम्बल पर रंग चढ़ाना था। जी में तो आया, कह दें, चल, दूर हो यहाँ से। यों तो बुलाने से भी नहीं आता, आज जब ग़रज़ पड़ी तो आकर खुशामद कर रहा है। हरामख़ोर कहीं का, बदमाश ! लेकिन यह क्रोध या दण्ड का अवसर न था। जी में कुढ़ते हुए दो रुपये निकालकर फेंक दिये। मगर सान्त्वना का एक शब्द भी मुँह से न निकाला। उसकी तरफ़ ताका तक नहीं, जैसे सिर का बोझ उतारा हो।

जब ज़मींदार साहब ने दो रुपये दिये, तो गाँव के बनिये-महाजनों को इनकार का साहस कैसे होता? घीसू ज़मींदार के नाम का ढिंढोरा भी पीटना जानता था। किसी ने दो आने दिये, किसी ने चार आने। एक घंटे में घीसू के पास पाँच रुपये की अच्छी रक़म जमा हो गई। कहीं से नाज मिल गया, कहीं से लकड़ी। और दोपहर को घीसू और माधव बाज़ार से कफ़न लाने चले। इधर लोग बाँस-वाँस काटने लगे।

गाँव की नर्म दिल स्त्रियाँ आ-आकर लाश देखती थीं और उसकी बेकसी पर दो बूँद आँसू गिराकर चली जाती थीं।

(3)

बाज़ार में पहुँचकर घीसू बोला—लकड़ी तो उसे जलाने-भर को मिल गई है, क्यों माधव !

माधव बोला—हाँ, लकड़ी तो बहुत है, अब कफ़न चाहिए।

—तो चलो, कोई हलका-सा कफ़न ले लें।

—हाँ, और क्या ! लाश उठते-उठते रात हो जायगी। रात को कफ़न कौन देखता है?

—कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।

—कफ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है।

—और क्या रखा रहता है? यही पाँच रुपये पहले मिलते, तो कुछ दवा-दारू कर लेते।

दोनों एक दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे। बाज़ार में इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस बजाज की दुकान पर गये, कभी उसकी दूकान पर। तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गई। तब दोनों न-जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुँचे। और जैसे किसी पूर्व-निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गये। वहाँ जरा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा—साहुजी, एक बोतल हमें भी देना।

—इसके बाद कुछ चिख़ौना आया, तली हुई मछली आई और दोनों बरामदे में बैठकर शान्तिपूर्वक पीने लगे।

कई कुज़ियाँ ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गये।

घीसू बोला—कफ़न लगाने से क्या मिलता? आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।

माधव आसमान की तरफ देखकर बोला, मानो देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो—दुनिया का दस्तूर है, नहीं लोग बाँभनों को हजारों रुपये क्यों दे देते हैं? कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं !

—बड़े आदमियों के पास धन है, फूँकें। हमारे पास फूँकने को क्या है?

—लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे? लोग पूछेंगे नहीं, कफ़न कहाँ है?

घीसू हँसा—अबे, कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गये। बहुत ढूँढ़ा, मिले नहीं। लोगों को विश्वास न आयेगा, लेकिन फिर वही रुपये देंगे।

माधव भी हँसा—इन अनपेक्षित सौभाग्य पर। बोला—बड़ी अच्छी थी बेचारी ! मरी तो खूब खिला-पिलाकर !

आधी बोतल से ज्यादा उड़ गई। घीसू ने दो सेर पूड़ियाँ मँगाईं। चटनी, अचार, कलेजियाँ। शराबख़ाने के सामने ही दूकान थी। माधव लपककर दो पत्तलों में सारे सामान ले आया। पूरा डेढ़ रुपया ख़र्च हो गया। सिर्फ थोड़े से पैसे बच रहे।

दोनों इस वक़्त इस शान से बैठे पूड़ियाँ खा रहे थे जैसे जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का ख़ौफ़ था, न बदनामी की फ़िक्र। इन सब भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।

घीसू दार्शनिक भाव से बोला—हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है तो क्या उसे पुन्न न होगा?

माधव ने श्रद्धा से सिर झुकाकर तसदीक़ की—ज़रूर-से-ज़रूर होगा। भगवान्, तुम अन्तर्यामी हो। उसे बैकुंठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं। आज जो भोजन मिला वह कभी उम्र-भर न मिला था।

एक क्षण के बाद माधव के मन में एक शंका जागी। बोला—क्यों दादा, हम लोग भी तो एक-न-एक दिन वहाँ जायेंगे ही?

घीसू ने इस भोले-भाले सवाल का कुछ उत्तर न दिया। वह परलोक की बातें सोचकर इस आनन्द में बाधा न डालना चाहता था।

—जो वहाँ हम लोगों से पूछे कि तुमने हमें कफ़न क्यों नहीं दिया। तो क्या कहोगे?

—कहेंगे तुम्हारा सिर !

—पूछेगी तो ज़रूर !

—तू कैसे जानता है कि उसे कफ़न न मिलेगा? तू मुझे ऐसा गधा समझता है? साठ साल क्या दुनिया में घास खोदता रहा हूँ? उसको कफ़न मिलेगा और बहुत अच्छा मिलेगा !

माधव को विश्वास न आया। बोला—कौन देगा? रुपये तो तुमने चट कर दिये। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी माँग में तो सेंदुर मैंने डाला था।

घीसू गर्म होकर बोला—मैं कहता हूँ, उसे कफ़न मिलेगा, तू मानता क्यों नहीं?

—कौन देगा, बताते क्यों नहीं?

—वही लोग देंगे, जिन्होंने अबकी दिया। हाँ, अबकी रुपये हमारे हाथ न आयेंगे।

ज्यों-ज्यों अंधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज होती थी, मधुशाला की रौनक भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था, कोई डींग मारता था, कोई अपने संगी के गले चिपटा जाता था। कोई अपने दोस्त के मुँह में कुल्हड़ लगाये देता था।

वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर एक चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराबसे ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए यह भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं या न जीते हैं, न मरते हैं।

और यह दोनों बाप-बेटे अब भी मज़े ले-लेकर चुसकियाँ ले रहे थे। सबकी निगाहे इनकी ओर जमी हुई थीं। दोनों कितने भाग्य के बली हैं ! पूरी बोतल बीच में है।

भरपेट खाकर माधव ने बची हुई पूड़ियों का पत्तल उठाकर एक भिखारी को दे दिया, जो खड़ा इनकी ओर भूखी आँखों से देख रहा था। और देने के गौरव, आनन्द और उल्लास का अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया।

घीसू ने कहा—ले जा, खूब खा और आशीर्वाद दे ! जिसकी कमाई है, वह तो मर गई। मगर तेरा आशीर्वाद उसे जरूर पहुँचेगा। रोयें-रोयें से आशीर्वाद दो, बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं !

माधव ने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा—वह बैकुंठ में जायगी दादा, बैकुंठ की रानी बनेगी।

घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला—हाँ बेटा, बैकुंठ में जायगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी हो गई। वह न बैकुंठ जायगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जायेंगे, जो ग़रीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप को

धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं?

श्रद्धालुता का रंग तुरन्त ही बदल गया। अस्थिरता नशे की ख़ासियत है। दुःख और निराशा का दौरा हुआ।

माधव बोला—मगर दादा, बेचारी ने ज़िन्दगी में बड़ा दुःख भोगा। कितना दुःख झेलकर मरी!

वह आँखों पर हाथ रखकर रोने लगा, चीखें मार-मार कर।

घीसू ने समझाया—क्यों रोता है बेटा, ख़ुश हो कि वह माया-जाल से मुक्त हो गई, जंजाल से छूट गई। बड़ी भाग्यवान थी, जो इतनी जल्द माया-मोह के बन्धन तोड़ दिये।

और दोनों खड़े होकर गाने लगे—

ठगिनी क्यों नैना झमकावे! ठगिनी!

पियक्कड़ों की आँखें इनकी ओर लगी हुई थीं और यह दोनों अपने दिल में मस्त गाये जाते थे। फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी। गिरे भी, मटके भी। भाव भी बताये, अभिनय भी किये और आख़िर नशे से मदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।

('चाँद', हिन्दी मासिक पत्रिका, अप्रैल, 1936)